ओ३म्

महर्षि दयानन्द बोले

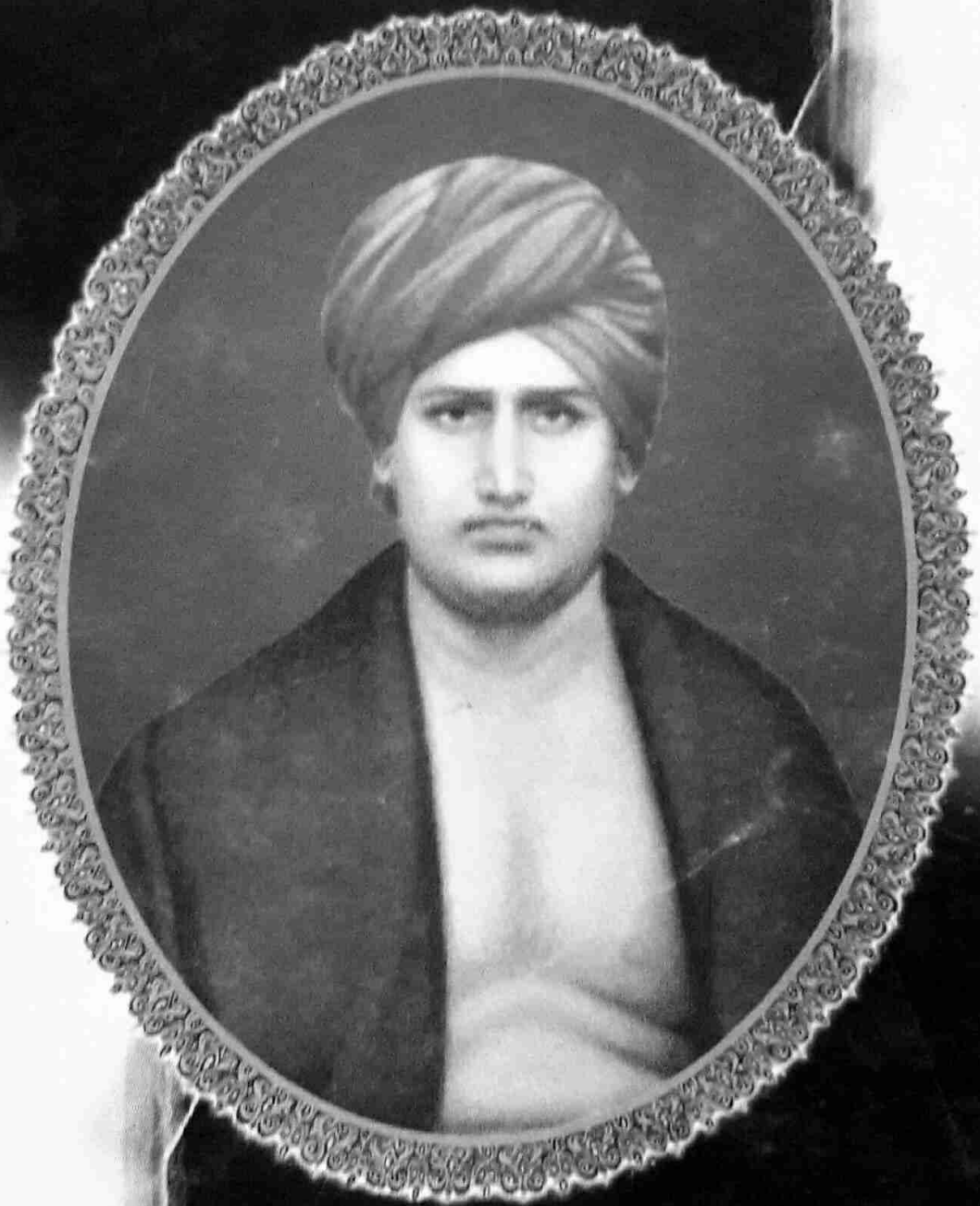

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ओ३म्

महर्षि दयानन्द बोले

संकलनकर्त्ता

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

आर्य रविन्द्र

प्रकाशक :

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास

हिण्डौन सिटी (राज०)-३२२ २३०

चलभाष-०९८८७४५२९५९, ०९४१४०३४०७२

प्रकाशित प्रतियाँ : ४०००० मूल्य : ४.०० रुपये

प्रकाशकीय

समाधि आनन्दभोक्ता देव दयानन्द को स्व की कुछ भी चाह नहीं रही। अपनी मान्यताओं के सम्बन्ध में भी उन्होंने कहा—जो वेदोक्त है, वही सही तथा अन्तिम और कल्याणकारी है। अपनी व्यक्तिगत मान्यताओं के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द कहते हैं—देश, काल और परिस्थितियों के अनुरूप पक्षपातरहित होकर विद्वान् जो व्यवस्था देंगे वह परिवर्तनीय है। इसका आशय स्पष्ट है कि वेदों में लिखित सर्वांस सही व हितकारी है लेकिन कुछ नियम वेदोक्त मर्यादाओं से सामञ्जस्य बिठाते हुए व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व के लिए पृथक् हो सकते हैं जो परिवर्तनीय हैं।

ऐसा सहज महापुरुष हमारी दृष्टि में आज तक नहीं आया। अधिक कुछ लिखना अपनी ही योग्यता स्थापित करने जैसा होगा। ऐसे ऋषिराज दयानन्द के विभिन्न ग्रन्थों से उनके विचार व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के हितार्थ स्मरणीय स्मृतिशेष स्वामी श्री जगदीश्वरानन्दजी सरस्वती ने संकलित किये हैं। अपने मानसगुरु दयानन्द के आदर्शों पर जीवन व्यतीत करने का स्वामीजी ने आजीवन यत्न किया।

यह लघु पुस्तिका हमारे मार्गदर्शक स्वामीजी की स्मृति को सादर समर्पित है। कुछ सहयोगी आर्थिक सहयोग करेंगे तो इसे बड़ी संख्या में अल्प मूल्य पर विक्रय करने का मानस है। आपके सहयोग की अपेक्षा सहित—

—प्रभाकरदेव आर्य

दो शब्द

महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्रादुर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। वे वेदों के प्रकाण्ड विद्वान्, योगिराज, देशोद्धारक, समाज-सुधारक, कुरीति-निवारक, महान् शिक्षाशास्त्री, शास्त्रार्थ-महारथी, अद्वितीय वक्ता, सिद्धहस्त लेखक, गोरक्षक, अनाथ-प्रतिपालक, नारी एवं अछूतोद्धारक, महान् दार्शनिक, संस्कृतभाषा के उद्भट विद्वान्, स्वराज्य के प्रथम उद्घोषक, पाखण्ड-खण्डिनी-पताका-उत्तोलक, क्रान्ति के अग्रदूत और आध्यात्मिक गुरु थे।

उन्होंने समाज में फैली हुई कुरीतियों पर प्रबल प्रहार किया। उन्होंने बाल और अनमेल विवाहों का विरोध किया। नारी-शिक्षा पर बल दिया। वेद पढ़ने का अधिकार मानवमात्र को प्रदान किया। वर्ण-व्यवस्था को गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर बताया। उन्होंने मरती हुई आर्यजाति में आत्मसम्मान और आत्मगौरव का मन्त्र फूँका और अपनी संस्कृति तथा सभ्यता पर गर्व करना सिखाया। उनकी सत्यवादिता और

निर्भीकता ने समाज में प्राण फूँक दिया। वे स्वराज्य के प्रथम मन्त्रदाता थे। अंग्रेज़ों के राज्य में उन्होंने निर्भीकतापूर्वक घोषणा की—

कोई कितना ही करे, जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित अपने और पराये का पक्षपात-शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है। **—सत्यार्थप्रकाश, अष्टमसमुल्लास**

इस लघु पुस्तिका में महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य और उनके छोटे-बड़े सभी ग्रन्थों से मानवजीवन को बोध और दिशा देने के लिए व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक विषयों पर कुछ प्रेरक वाक्यों का संग्रह किया गया है। इन्हें पढ़ें, इनपर चिन्तन और मनन करें, इन्हें अपने जीवन में धारण करें और इनपर आचरण करें।

वेद-मन्दिर
ज्वालापुर, हरिद्वार
(उत्तराञ्चल)

विदुषामनुचरः
जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ओ३म्

महर्षि दयानन्द बोले

अतिथि

जो पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी, छल-कपटरहित, नित्य भ्रमण करनेवाले मनुष्य होते हैं, उनको '**अतिथि**' कहते हैं। —पञ्चमहायज्ञविधिः

आचार्य

'**आचार्य**' उसे कहते हैं, जो साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द, अर्थ, सम्बन्ध और क्रिया का जाननेहारा, छल-कपटरहित, अतिप्रेम से सबको विद्या का दाता, परोपकारी, तन-मन और धन से सबका सुख बढ़ाने में तत्पर, महाशय, पक्षपात किसी का न करे, सत्योपदेष्टा, सबका हितैषी, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय होवे। —संस्कारविधिः, उपनयनप्रकरणम्

आप्त

वे ही आप्त जन हैं, जो अपने आत्मा के तुल्य अन्यों का भी सुख चाहते हैं। उन्हीं के सङ्ग से विद्या की प्राप्ति, अविद्या की हानि, धन का लाभ तथा दरिद्रता का नाश होता है। —यजुः० २९।३७

जो छलादि दोषरहित, धर्मात्मा, विद्वान्, सत्योपदेष्टा, सबपर कृपादृष्टि से वर्त्तमान होकर, अविद्यान्धकार का नाश

करके अज्ञानी लोगों के आत्माओं में विद्यारूप सूर्य का प्रकाश सदा करे, उसको '**आप्त**' कहते हैं। —आर्योद्देश्यरत्नमाला

आर्यसमाज

इसलिए जो उन्नति करना चाहो तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए, नहीं तो कुछ हाथ नहीं लगेगा, क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें, क्योंकि जैसा आर्यसमाज आर्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता। —सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास

आलस्य

जो आलस्ययुक्त जन पुरुषार्थ नहीं करते, वे अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त नहीं होते। —ऋ० ५।३४।५

किसी को निकम्मा कभी न रहना और न रखना चाहिए। —व्यवहारभानुः

आर्ष-ग्रन्थ

महर्षि लोगों का आशय जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे, इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी, जिसको बड़े परिश्रम

से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें। जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और आर्षग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसे एक गोता लगाना और बहुमूल्य मोतियों का पाना।

—सत्यार्थप्रकाश, तृतीयसमुल्लास

जितने ग्रन्थ पक्षपाती, क्षुद्रबुद्धि, कम विद्यावाले, अधर्मात्मा, असत्यवादियों के कहे वेदार्थ के विरुद्ध और युक्तिप्रमाणरहित हैं, उनको स्वीकार करना योग्य नहीं।

—ऋग्वेदादि० ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषयः

ईश्वर

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है। —आर्यसमाज का दूसरा नियम

सब मनुष्य विद्वानों के सङ्ग, योगाभ्यास और श्रेष्ठ कर्मों के आचरण से परमेश्वर को अवश्य जानें। —यजुः० १८।६०

परमेश्वर देवों का देव होने से '**महादेव**' इसीलिए कहाता है कि वही सब जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयकर्त्ता, न्यायाधीश और अधिष्ठाता है। —सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आँख आदि अवयवों का बनानेहारा दूसरा होना चाहिए,

क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है, उसको संयुक्त करनेवाला निराकार, चेतन अवश्य होना चाहिए।

—सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

परमेश्वर क्या चाहता है? सबकी भलाई और सबके लिए सुख चाहता है। —सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि 'गर्भ में आया या मूठी में धर लिया', ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता, क्योंकि आकाश अनन्त और सबमें व्यापक हैं, इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही परमात्मा के अनन्त और सर्वव्यापक होने से उसका आना-जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। —सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

आपके पुत्र हम लोग जब पूर्णानन्द में रहेंगे तभी आप पिता की शोभा है, क्योंकि लड़के लोग छोटी-बड़ी चीज़ अथवा सुख पिता-माता को छोड़ किससे माँगें?

—आर्याभिविनय

उपकार

[मनुष्य] सब उत्तम कामों में ईश्वर का सहाय चाहें और सदा पश्चात्ताप करें कि मनुष्य-शरीर धारण करके हम लोगों से जगत् का उपकार कुछ नहीं बनता। जैसे ईश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति करके सब जगत् का उपकार किया

है, वैसे हम लोग भी सबका उपकार करें।

—पञ्चमहायज्ञविधिः

उपासना

हे मनुष्यो! जो अद्वितीय, सबसे उत्तम, सच्चिदानन्द-स्वरूप, न्यायकारी और सबका स्वामी है, उसका त्याग करके अन्य की उपासना कभी न करो। —ऋ० ६।२२।१

जैसे ग़ोताख़ोर जल में डुबकी मारके शुद्ध होके बाहर आता है, वैसे ही सब जीव लोग अपने आत्माओं को शुद्ध, ज्ञान, आनन्दस्वरूप, व्यापक परमेश्वर में मग्न करके नित्य शुद्ध करें। —पञ्चमहायज्ञविधिः

जब आसन दृढ़ हो जाता है, तब उपासना करने में कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता और न सर्दी-गर्मी अधिक बाधा करती है। —ऋग्वेदादि० उपासना०

न्यून-से-न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करे। जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं, वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करें।

—सत्यार्थप्रकाश, तृतीयसमुल्लास

कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदयदेश है, जिसको ब्रह्मपुर, अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकारवत् वेश्म, अर्थात् अवकाशरूप एक स्थान है, इसके

बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर-भीतर एकरस होकर भर रहा है, वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है, दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है।

—ऋग्वेदादि० उपासनाविषय:

जब उपासना करना चाहे, तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न होकर संयमी होवे।

—सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष, दु:ख छूटकर परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव हो जाते हैं, इसलिए परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए। —सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

[उपासना से] आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दु:ख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सबको सहन कर सकेगा, क्या यह छोटी बात है?

—सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

जो परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है, क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों के सुख के लिए दे रक्खे हैं, उसका गुण भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है। —सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

जो मनुष्य वेदादि सद्विद्या, पक्षपातरहित न्याय और वैरबुद्धि-त्यागादिस्वरूप धर्म का बोध कराता है, उसको और जो मनुष्य यथावत् ऐसे बोध को स्वीकार करता और न्यायकारी, दयालु, निराकार परमेश्वर की प्रार्थना, उपासना तथा स्तुति बराबर करेगा, केवल उसी को सद्गति प्राप्त होगी।

—शिक्षापत्री-ध्वान्तनिवारणम्

गृह

मनुष्यों को चाहिए कि सब ऋतुओं में सुखकारक, धन-धान्य से युक्त, वृक्ष, पुष्प, फल, शुद्ध वायु, जल तथा धार्मिक धनाढ्यों से युक्त गृह बनाकर वहीं निवास करें, जिससे सर्वदा आरोग्य से सुख बढ़े। —ऋ० ६।४६।८

जो स्त्री-पुरुष विरोध को सर्वथा छोड़के एक-दूसरे की प्रीति में तत्पर, विद्या के विचार से युक्त तथा अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण धारण करनेवाले होके प्रयत्न करें तो घर में कल्याण और आरोग्य बढ़े और जो परस्पर-विरोधी हों तो दु:खसागर में अवश्य डूबें। —यजु:० १२।५७

गृहस्थ कर्त्तव्य

विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्रियों का मुख्य कर्त्तव्य यही है कि वे पुत्र और पुत्रियों को ब्रह्मचर्य और सुशिक्षा से विद्वान् और विदुषी, सुन्दर शीलयुक्त सदा किया करें।

—यजुः० १९।३९

जब-जब प्रातः-सायं वा परदेश से आकर मिलें, तब-तब 'नमस्ते' इस वाक्य से परस्पर नमस्कार कर स्त्री पति का चरणस्पर्श, पाद-प्रक्षालन, आसन-दान करे तथा दोनों परस्पर प्रेम बढ़ानेहारे वचनादि व्यवहारों से वर्त्तकर आनन्द भोगें। —संस्कारविधिः, विवाहप्रकरणम्

[स्त्री-पुरुष] कोई किसी का अप्रिय आचरण, अर्थात् जिस-जिस व्यवहार से एक-दूसरे को कष्ट होवे सो काम न करें, जैसेकि व्यभिचार आदि। एक-दूसरे को देखकर प्रसन्न हों, एक-दूसरे की सेवा करें। —व्यवहारभानुः

[स्त्री-पुरुष की] परस्पर प्रीति के विना न गृहाश्रम का किञ्चित् सुख, न उत्तम सन्तान और न प्रतिष्ठा वा लक्ष्मी आदि श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति कभी होती है। —व्यवहारभानुः

जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है, वह निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है, वही प्रशंसनीय है, परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता

हों। —सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थसमुल्लास

जीव

ब्रह्म से भिन्न, अनादि, अनुत्पन्न और अमृतस्वरूप चेतन का नाम 'जीव' है। —सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

तीर्थ

जितने विद्याभ्यास, सुविचार, ईश्वरोपासना, धर्मानुष्ठान, सत्य का सङ्ग, ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियतादि उत्तम कर्म हैं, वे सब तीर्थ कहाते हैं, क्योंकि इनके द्वारा जीव दुःख-सागर से तर सकते हैं। —आर्योद्देश्यरत्नमाला

मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं। उनमें पहले तो वे जो ब्रह्मचर्य, गुरु की सेवा, वेदादि शास्त्रों को पढ़ना-पढ़ाना, सत्संग, ईश्वर की उपासना और सत्यभाषण आदि दुःख-सागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वे जिनसे समुद्रादि जलाशयों के इस पार से उस पार जाने-आने में समर्थ हों। —यजुः० १६।६१

दुःख

हे मनुष्यो! जैसे श्येन=बाज़, पक्षी और पखेरुओं की गर्दनें पकड़कर घोटता है, वैसे किसी को दुःख न देओ।

—ऋ० ६।४८।२७

धन्य

धन्य वे मनुष्य हैं जो अनित्य शरीर और सुख-दुःख

आदि के व्यवहार में वर्त्तमान होकर नित्यधर्म का त्याग कभी नहीं करते। —संस्कारविधिः, गृहाश्रमप्रकरणम्

धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक विद्या पूरी न हो, तब तक सुशीलता का उपदेश करे।

—सत्यार्थप्रकाश, द्वितीयसमुल्लास

वह कुल धन्य, वह सन्तान बड़ा भाग्यवान्, जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों।

—सत्यार्थप्रकाश, द्वितीयसमुल्लास

धर्म-अधर्म

मैंने परीक्षा करके निश्चय किया है कि जो मनुष्य धर्मयुक्त व्यवहार में ठीक-ठीक वर्त्तता है, उसको सर्वत्र सुखलाभ और जो विपरीत वर्त्तता है, वह सदा दुःखी होकर अपनी हानि कर लेता है। —व्यवहारभानुः

जब मनुष्य धार्मिक होता है तब उसका विश्वास और मान्य शत्रु भी करते हैं और जब अधर्मी होता है तब उसका विश्वास और मान्य मित्र भी नहीं करते। —व्यवहारभानुः

चाहे झूठ, अधर्म से चक्रवर्ती राज्य भी मिलता हो तथापि धर्म को छोड़कर चक्रवर्ती राज्य को भी ग्रहण न करे।

—संस्कारविधिः, गृहाश्रमप्रकरणम्

जो मनुष्य विद्या पढ़ने का सामर्थ्य तो नहीं रक्खे, परन्तु वह धर्माचरण किया चाहे तो विद्वानों के सङ्ग, अपने आत्मा

की पवित्रता और अविरुद्धता से धर्मात्मा अवश्य हो सकता है, क्योंकि सब मनुष्यों का विद्वान् होना तो सम्भव ही नहीं, परन्तु धार्मिक होने का सम्भव सबके लिए है।

—व्यवहारभानुः

जो सब व्यवहारों में झूठ को छोड़कर सत्य ही कहते हैं, उनको लाभ-ही-लाभ होते हैं, हानि कभी नहीं, क्योंकि सत्य व्यवहार करने का नाम '**धर्म**' और विपरीत का नाम '**अधर्म**' है। —व्यवहारभानुः

नमस्ते

परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब 'नमस्ते' इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों, बड़े छोटों, नीच उत्तमों, उत्तम नीचों और क्षत्रियादि ब्राह्मणों वा ब्राह्मणादि क्षत्रियों का निरन्तर सत्कार करें। —यजुः० १६।३२

नारी-कर्त्तव्य

हे स्त्रि! जैसे पगड़ी आदि वस्त्र सुख देनेवाले होते हैं, वैसे तू पति के लिए सुख देनेवाली हो। —यजुः० ३८।३

स्त्री सुनियम, युक्ताहार-विहार करे। विशेषकर गिलोय, ब्राह्मी ओषधि और सोंठ को दूध के साथ थोड़ी-थोड़ी खाया करे। अधिक शयन और अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कड़वा, रेचक हरड़ आदि न खावे। सूक्ष्म आहार करे। क्रोध, द्वेष, लोभ आदि दोषों में न फँसे, चित्त को सदा प्रसन्न

रक्खे, इत्यादि शुभाचरण करे।

—संस्कारविधिः, पुंसवनप्रकरणम्

जो स्त्री पृथिवी के तुल्य क्षमा करनेवाली, क्रूरता आदि दोषों से अलग, बहुत प्रशंसित, दूसरों के दोषों का निवारण करनेहारी है, वही घर के कार्यों में योग्य होती है।

—यजुः० ३५।३१

पशुहत्या

गो आदि पशुओं का नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है। —गोकरुणानिधिः

हे परमेश्वर! तू क्यों इन पशुओं पर जोकि विना अपराध मारे जाते हैं, दया नहीं करता? क्या उनपर तेरी प्रीति नहीं है? क्या इनके लिए तेरी न्यायसभा बन्द हो गई है?

—गोकरुणानिधिः

पाप

जगदीश्वर को सर्वव्यापक, न्यायकारी, सर्वत्र, सर्वदा सब जीवों के कर्मों के द्रष्टा को निश्चित मानके पाप की ओर अपने आत्मा और मन को कभी न जाने देवे।

—संस्कारविधिः, गृहाश्रमप्रकरणम्

पुत्र

हे मनुष्यो! जिस पुत्र के विद्यमान रहने पर माता और पिता को दुःख होता है और सत्कार नहीं होता, वह भाग्यहीन

निरन्तर पीड़ित होता है और जिस पुत्र की उत्तम सेवा से माता-पिता प्रसन्न होते हैं, उसकी प्रजाओं में प्रशंसा और उसको सुख होता है। —ऋ० ४।३।७

पुर्नजन्म

आवागमन सत्य है और जो जैसे कर्म करता है, वैसा ही शरीर पाता है। जो अच्छा काम करता है तो मनुष्य का और जो बुरे काम करता है तो पक्षी आदि का शरीर पाता है और जो बहुत उत्तम काम करता है, वह देवता, अर्थात् विद्वान् और बुद्धिमान् होता है। —सत्यधर्मविचार

पुरुषार्थ

ईश्वर ने मनुष्यों में जितना सामर्थ्य रक्खा है, उतना पुरुषार्थ अवश्य करें। उसके उपरान्त ईश्वर के सहाय की इच्छा करनी चाहिए। —ऋग्वेदा० वेदोक्तधर्मविषयः

पुरोहित

धर्मात्मा, शास्त्रोक्त-विधि को पूर्ण रीति से जाननेहारा, विद्वान्, सद्धर्मी, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूजनीय, सर्वोपकारी गृहस्थ की '**पुरोहित**' संज्ञा है।

—संस्कारविधिः, जातकर्मप्रकरणम्

प्रशंसनीय

जो मनुष्य विज्ञान को बढ़ाते, दुष्टों का निवारण करते और द्वेषादि दोषों से रहित हुए सनातन सत्य को धारण करते

हैं, वे अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं। —ऋ० ५।४५।५

प्राणायाम

प्राण अपने वश में होने से [प्राणायाम से] मन और इन्द्रियाँ भी स्वाधीन होते हैं, बल-पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र और सूक्ष्मरूप हो जाती है, जो बहुत कठिन और सूक्ष्मविषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। —सत्यार्थप्रकाश, तृतीयसमुल्लास

फूट

आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है, न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःखसागर में डुबा मारेगा। उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्रहत्यारे, स्वदेशविनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्यलोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों से नष्ट हो जाए। —सत्यार्थप्रकाश, दशमसमुल्लास

ब्रह्मचर्य

[हे ब्रह्मचारिन्! तू] रात्रि के चौथे प्रहर में जाग, आवश्यक शौचादि, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना, योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर। —संस्कारविधिः वेदारम्भप्रकरणम्

[विद्यार्थी] मिथ्या को छोड़के सत्य बोलें, सरल रहें,

अभिमान न करें, आज्ञा पालन करें, स्तुति करें, निन्दा न करें, नीचे आसन पर बैठें, ऊँचे पर न बैठें, शान्त रहें, चपलता न करें, आचार्य की ताड़ना पर प्रसन्न रहें, क्रोध कभी न करें।

—व्यवहारभानुः

भारत

जितने भूगोल में देश हैं, वे सब इसी [भारत] की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि [इसी देश की सभ्यता और संस्कृति से हमारा उद्धार और कल्याण होगा]। जो 'पारसमणि' पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण, अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं। —सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास

भावना

पत्थर में पत्थर, रोटी में रोटी की भावना करना यथार्थ ज्ञान कहाता है, अर्थात् जैसे को वैसा जानना '**भावना**' है। रोटी में पत्थर और पत्थर में रोटी की भावना करना मिथ्या ज्ञान, अन्य-में-अन्य बुद्धि, भ्रमरूप '**अभावना**' कहाती है।

—वेदविरुद्धमतखण्डन

जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य-शरीर पाके भी वैसा ही कर्म करते हैं, तब वे मनुष्यस्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं और जो

बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है, वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानिमात्र करता रहता है, वह जानों पशुओं का भी बड़ा भाई है।

—सत्यार्थप्रकाश, भूमिका

'मनुष्य' उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं की, चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित भी क्यों न हों, रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे।

—सत्यार्थप्रकाश, स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश

मूर्त्तिपूजा

मूर्त्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है, जिसमें गिरकर [मनुष्य] चकनाचूर हो जाता है, पुनः उस खाई में से निकल नहीं सकता, किन्तु उसी में मर जाता है।

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास

यदि कहो कि मूर्त्तियों का पूजना मुक्ति का साधन है, तो ठीक नहीं, क्योंकि उस मूर्त्ति को कारीगर वा पुजारी ने एक स्थान में स्थिर=बद्ध किया और स्वयं जड़ है तो अन्य

को क्या मुक्ति दे सकेगी ? —वेदविरुद्धमतखण्डन

वधू

पति, सासु-श्वशुर, ननद, देवर, देवरानी, ज्येष्ठ, जेठानी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा, अर्थात् सत्कार करें, सदा प्रीतिपूर्वक वर्त्तें और मधुरवाणी, वस्त्र, आभूषण आदि से सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट वधू को रक्खें तथा वधू भी सबको प्रसन्न रक्खे। —संस्कारविधिः, विवाहप्रकरणम्

विद्या

ब्रह्माण्ड में जितने उत्तम पदार्थ हैं, उनकी प्राप्ति से जितना सुख होता है, सो सुख विद्या-प्राप्ति होने के सुख के हज़ारवें अंश के भी समतुल्य नहीं हो सकता।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोत्पत्तिविषयः

सब मनुष्यों को उचित है कि आप अपने लड़के-लड़की, इष्ट-मित्र, अड़ोसी-पड़ोसी और स्वामी, भृत्यादि को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करके सर्वदा आनन्द करते रहें।

—व्यवहारभानुः

मनुष्य का नेत्र विद्या ही है। बिना विद्या-शिक्षा के ज्ञान नहीं होता। जो बाल्यावस्था में उत्तम शिक्षा पाते हैं, वे ही मनुष्य और विद्वान् होते हैं। जिनको कुसङ्ग है, वे दुष्ट, पापी, महामूर्ख होकर बड़े दुःख पाते हैं।

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास

जिससे ईश्वर से लेकर पृथिवीपर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है, उसका नाम 'विद्या' है। —आर्योद्देश्यरत्नमाला

विवाह

जो अपने कुल की उत्तमता, सन्तान को उत्तम, दीर्घायु, सुशील, बुद्धि, बल, पराक्रमयुक्त, विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें, वे सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें। यही सब सुधारों-का-सुधार, सब सौभाग्यों-का-सौभाग्य और सब उन्नतियों-की-उन्नति करनेवाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रखके अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवें। —संस्कारविधि, गर्भाधानप्रकरणम्

विविध

जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं, वैसे उत्तम, बलवान् स्त्री-पुरुषों से सन्तान भी उत्तम होते हैं। —संस्कारविधिः, गर्भाधानप्रकरणम्

सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे। न शीघ्र, न विलम्ब से उच्चारण करे, किन्तु मध्यभाग जैसाकि जिस वेद का उच्चारण है, करे।

—संस्कारविधि, सामान्यप्रकरणम्

संसार को लाभ पहुँचाना ही मुझको चक्रवर्ती राज्य के तुल्य है। —भ्रान्तिनिवारण

परमात्मा की कृपा से मेरा शरीर बना रहा और कुशलता से वह दिन देखने को मिला कि वेदभाष्य सम्पूर्ण हो जावे तो निःसन्देह इस आर्यावर्त्त देश में सूर्य का-सा प्रकाश हो जावेगा कि जिसके मेटने और झाँपने को किसी का सामर्थ्य न होगा। —भ्रान्तिनिवारण

दाहकर्म और अस्थिसंचयन से पृथक् मृतक के लिए दूसरा कोई भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है। हाँ, यदि वह सम्पन्न हो तो अपने जीते वा मेरे पीछे उसके सम्बन्धी वेदोक्तधर्म के प्रचार, अनाथपालन, वेदोक्त धर्मोपदेश-प्रवृत्ति के लिए चाहे जितना धन प्रदान करें, बहुत अच्छी बात है।

—संस्कारविधिः, अन्त्येष्टिप्रकरणम्

वेदादि शास्त्रों की रीति से आर्यों ने भूगोल में करोड़ों वर्ष राज्य किया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

—ऋग्वेदादि० राजप्रजाधर्मविषयः

'अनाथ' उनको कहते हैं कि जिनका सामर्थ्य अपने पालन करने का भी न हो, जैसेकि बालक, वृद्ध, रोगी, अङ्गभङ्ग आदि हैं। —व्यवहारभानुः

जो राज्य किया चाहें वे हाथ-पाँव का बल [बढ़ाएँ], युद्ध की शिक्षा [प्राप्त करें] तथा शस्त्र और अस्त्रों का संग्रह

करें। —यजुः० १६।१

अध्यापक एवं उपदेशक लोगों को योग्य है कि इस प्रकार सबको अच्छी शिक्षा से युक्त करें, जिससे वे शुद्ध आत्मा, नीरोग शरीर और धर्मयुक्त कर्म करनेवाले हों।

—यजुः० २०।२०

जो मनुष्य परमेश्वर के वा आप्त विद्वान् के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल वर्त्तते हैं, वे कभी नष्ट-सुखवाले नहीं होते। —यजुः० ३४।४१

जो मनुष्य दुष्टों का आचरण और सङ्ग छोड़के परमेश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् की सेवा करते हैं, वे धन-धान्य से युक्त हुए दीर्घ अवस्थावाले होते हैं। —यजुः ३५।१६

जो सुखविशेष और सुख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है, वह **'स्वर्ग'** कहाता है। —आर्योद्देश्यरत्नमाला

वह **'जन्म-पत्र'** नहीं, किन्तु उसका नाम **'शोकपत्र'** रखना चाहिए। —सत्यार्थप्रकाश, द्वितीयसमुल्लास

देखो, जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है, तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़के बहुत सुख की प्राप्ति होती है.....जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुसंक, महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि

गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है।

—सत्यार्थप्रकाश, द्वितीयसमुल्लास

जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करनेवाले की होती है, वैसी अन्य किसी की नहीं, इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी, उसके साथ वैसे ही पूरी करनी चाहिए.....नहीं तो उसकी प्रतीति[1] कोई भी नहीं करेगा। —सत्यार्थप्रकाश, द्वितीयसमुल्लास

'छल' और **'कपट'** उसको कहते हैं कि जो भीतर और, बाहर और रख, दूसरे को मोह में डाल और दूसरे की हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना। **'कृतघ्नता'** उसको कहते हैं कि किसी के किये हुए उपकार को न मानना। —सत्यार्थप्रकाश, द्वितीयसमुल्लास

सोने, चाँदी, माणिक, मोती, मूँगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण करने से मनुष्य की आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकती। —सत्यार्थप्रकाश, तृतीयसमुल्लास

[गुरुकुल में] सबको तुल्य वस्त्र, खान, पान, आसन दिये जाएँ, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिए।

—सत्यार्थप्रकाश, तृतीयसमुल्लास

'सर्वशक्तिमान्' शब्द का यही अर्थ है कि ईश्वर

---

१. विश्वास

अपने काम, अर्थात् सृष्टि-उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य-पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेता, अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही अपना सब काम पूर्ण कर लेता है।

—सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

देखो, श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण-कर्म-स्वभाव और चरित्र आप्तपुरुषों के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा।

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास

जिसमें होम किया जाता है, वही स्थान **'देवालय'** शब्दवाच्य हो सकता है, क्योंकि देवपूजा शब्द से होम का ग्रहण है। —वेदविरुद्धमतखण्डन

[हे परमेश्वर!] आप अपनी उदारता से ही हमको सब सुख दीजिए, किञ्च हम लोग तो आपके प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं है, हम सर्वथा आपके अनुकूल वर्त्तमान नहीं कर सकते, परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं, इससे हमको स्वकृपाकटाक्ष से सुखी करें। —आर्याभिविनय

इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी,

अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता।

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास

यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब असंख्य—बहुत-सा धन प्रयोजन से अधिक होता है, तब आलस्य, पुरुषार्थरहितता, ईर्ष्या-द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है।

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास

वृक्ष

किसी मनुष्य को श्रेष्ठ वृक्ष वा वनस्पति नष्ट न करने चाहिएँ। —ऋ० ६।४८।२७

वेद

जिनके पढ़ने से यथार्थ विद्या का विज्ञान होता है, जिनको पढ़के विद्वान् होते हैं, जिससे सब सुखों का लाभ होता है और जिनसे ठीक-ठीक सत्यासत्य का विचार मनुष्यों को होता है, इससे ऋक्-संहितादि का **'वेद'** नाम है।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोत्पत्तिविषयः

हे मनुष्यो! आप लोग जिससे सब वेद उत्पन्न हुए हैं उस परमात्मा की उपासना करो। वेदों को पढ़ो और उनकी आज्ञा के अनुकूल वर्त्तके सुखी होओ। —यजुः० ३१।७

वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त, स्वतःप्रमाण, अर्थात् वेद का प्रमाण वेद से ही होता है। ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतः-

प्रमाण, अर्थात् उनका प्रमाण वेदाधीन है।

—सत्यार्थप्रकाश, तृतीयसमुल्लास

क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने-सुनने का शूद्रों के लिए निषेध करे और द्विजों के लिए विधि करे? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने-सुनाने का न होता, तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र-इन्द्रिय क्यों रचता?

—सत्यार्थप्रकाश, तृतीयसमुल्लास

वेद परमेश्वरोक्त हैं, इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिए और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है? तो यही उत्तर देना है कि हमारा मत वेद, अर्थात् जो कुछ वेद में कहा है, हम उसको मानते हैं।

—सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास

वेद के विना अन्य कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त नहीं है, जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है, वैसा ही वेद-पुस्तक भी है, अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत, वेदतुल्य वा अधिक नहीं है।

—आर्याभिविनय

शिक्षा

[सन्तान और शिष्य] क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे। जितना बोलना चाहिए, उससे न्यून वा अधिक न बोले। बड़ों को मान्य दे, उनके सामने उठकर जाके [उन्हें]

उच्चासन पर बैठावे। प्रथम **'नमस्ते'** करे। उनके सामने उच्च आसन पर न बैठे। सभा में वैसे स्थान पर बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे।

—सत्यार्थप्रकाश, द्वितीयसमुल्लास

सत्य

सब मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि झूठ को सर्वथा छोड़कर सत्य ही से सब व्यवहार करें, जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहें।

—व्यवहारभानुः

सुख

जिन लोगों की समुद्र के सदृश अचल, गम्भीर बुद्धि, पृथिवी के सदृश क्षमा और पालने का सामर्थ्य, गौ के सदृश दान और नदी के सदृश वृद्धि है, वे ही सम्पूर्ण सुखों से युक्त होते हैं।

—ऋ० ३।४५।३

सृष्टि-रचना

देखो, शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत्, फेफड़ा, पंखाकला का स्थापन,

जीव का संयोजन, शिरोरूप मूल-रचन, लोम-नखादि का स्थापन, आँख की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिए स्थान-विशेषों का निर्माण, सब धातु का विभागकरण और उनका कला-कौशल से स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को बिना परमेश्वर के कौन कर सकता है?

—सत्यार्थप्रकाश, अष्टमसमुल्लास

स्तुतिप्रार्थनोपासना

मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, उससे भिन्न की कभी न करें, क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय, विद्वान् दैत्य, दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्यों ने भी परमेश्वर ही में विश्वास करके उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की, उससे भिन्न की नहीं, वैसा हम सबको करना योग्य है।

—सत्यार्थप्रकाश, प्रथमसमुल्लास

हे अनन्त पराक्रमेश्वर विष्णो! आप हमको अनन्त सुख देओ। हम लोग जो कुछ माँगेंगे आपसे ही माँगेंगे। सब सुखों को देनेवाला आपके विना कोई नहीं है। हम लोगों को सर्वथा आपका ही आश्रय है, अन्य किसी का नहीं, क्योंकि सर्व-

शक्तिमान्, न्यायकारी, दयामय, सबसे बड़े पिता को छोड़के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे। आपका तो स्वभाव ही है कि आप अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते, सो आप हमको सदैव सुख देंगे, यह हमको दृढ़ निश्चय है।

—आर्याभिविनय

संन्यासी

जैसे अग्नि आप शुद्ध हुआ सबको शुद्ध करता है, वैसे संन्यासी लोग स्वयं पवित्र हुए सबको पवित्र करते हैं।

—ऋ० ७।१३।२

सत्योपदेश ही संन्यासियों का ब्रह्मयज्ञ है। ब्रह्म की उपासना देवयज्ञ है। विज्ञानियों की प्रतिष्ठा करना पितृयज्ञ है। मूर्खों को ज्ञान-दान, सब प्राणियों पर अनुग्रह और उन्हें पीड़ा न देना भूतयज्ञ है। सब मनुष्यों के उपकार के लिए भ्रमण करना, अभिमान शून्यता और सत्योपदेश करने से सब मनुष्यों का सत्कार-अनुष्ठान अतिथियज्ञ है।

—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वर्णाश्रमविषयः

परमेश्वर से भिन्न किसी की उपासना न करे, न वेदविरुद्ध कुछ माने, परमेश्वर के स्थान में सूक्ष्म वा स्थूल तथा जड़ और जीव को भी कभी न माने, परमेश्वर को सदा

अपना स्वामी माने और आप सेवक बना रहे, वैसा ही उपदेश अन्य को भी किया करे। —संस्कारविधिः, संन्यासप्रकरणम्

[संन्यासी] चाहे निन्दा हो चाहे प्रशंसा, चाहे मान हो चाहे अपमान, चाहे जीना हो चाहे मृत्यु, चाहे हानि हो चाहे लाभ, चाहे कोई प्रीति करे चाहे वैर बाँधे, चाहे अन्न, पान, वस्त्र, स्थान न मिले वा मिले, चाहे शीत-उष्ण कितना ही क्यों न हो, इत्यादि सबको सहन करे और अधर्म का खण्डन तथा धर्म का मण्डन सदा करता रहे, इससे परे उत्तम धर्म दूसरा किसी को न माने। —संस्कारविधिः, संन्यासप्रकरणम्

[हे संन्यासियो!] देखो, तुम्हारे सामने पाखण्ड मत बढ़ते जाते हैं। [आर्य] ईसाई और मुसलमान तक हो जाते हैं। तनिक भी तुमसे अपने घर की रक्षा और दूसरों को मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब जब तुम करना चाहो।

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास

संस्कार

जिससे शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं, इसलिए संस्कारों का करना सब मनुष्यों को उचित है।

—संस्कारविधिः